रजो गोत्रोर्द्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा। सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयोऽमलाः ॥१३॥
योऽसावग्न्यभिमानी स्याद् ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः। तस्मात्स्वाहा सुतॉंल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ॥१४॥
पावकं पवमानं तु शुचिं चापि जलाशिनम् ॥१५॥
तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च। कथ्यन्ते वह्नयश्चैते पितापुत्रत्रयं च यत् ॥१६॥
एवमेकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः ॥१७॥
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया द्विज। अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये॥१८॥
तेभ्यः स्वधा सूते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा। ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यावप्युभे द्विज॥१९॥
उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्वैः समुदितैर्गुणैः ॥२०॥
इत्येषा दक्षकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः। श्रद्धावान्संस्मरन्नेतामनपत्यो न जायते ॥२१॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायंभुवस्य तु। द्वौ पुत्रौ तु महावीर्यौ धर्मज्ञौ कथितौ तव ॥१॥
तयोरुत्तानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः। अभीष्टायामभूद्ब्रह्मन्पितुरत्यन्तवल्लभः ॥२॥
सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्यासीन्महिषी द्विज। स नातिप्रीतिमांस्तस्यामभूद्यस्या ध्रुवः सुतः ॥३॥

ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये उनके नाम थे। ये सातो महर्षि निर्मल स्वभाव के थे ॥१२-१३॥ हे द्विज ! ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र तथा अग्नि के अभिमानी देव के स्वाहा नामक पत्नी में अत्यन्त तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न हुए पावक, पवमान और जल का भक्षण करने वाला शुचि ॥१४-१५॥ उन तीनों के कुल मिलाकर पैंतालिस पुत्र हुए, पिता अग्नि, उनके तीनों पुत्र तथा पैंतालिस उनके पुत्र सब मिलाकर ये सभी उनचास अग्नि कहे जाते हैं।।१६-१७॥ हे द्विज ! जिनका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ, ब्रह्माजी के द्वारा सृष्ट अनग्निक, अग्निष्वाता, तथा साग्निक वर्हिषद पितृगणों से स्वधा ने अपनी मेना तथा धारिणी नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया। हे द्विज ! वे दोनों ब्रह्म वादिनी और योगिनियाँ थीं ॥१९॥ वे उत्तम ज्ञान तथा सभी गुणों से सम्पन्न थीं ॥२०॥ इस प्रकार से मैंने दक्ष की कन्याओं की वंश परम्परा का वर्णन किया। जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक इनका स्मरण करता है वह निःसन्तान नहीं रहता है ॥२१॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

ध्रुव का वन जाना और उनकी मरीचि आदि महर्षियों से भेंट

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— मैं पहले आपको बतला चूका हूँ कि स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र हुए प्रियव्रत और उत्तानपाद। ये दोनों महापराक्रमी और धर्मज्ञ थे ॥१॥ उन दोनों में से उत्तानपाद की प्रियतमा पत्नी का नाम सुरुचि था और उसके पुत्र का नाम उत्तम था। वह अपने पिता को अत्यन्त प्रिय था ॥२॥ हे द्विज ! राजा की दूसरी

राजासनस्थितस्याङ्कं पितुर्भ्रातरमाश्रितम् । दृष्ट्वोत्तमं ध्रुवश्चक्रे तमारोढुं मनोरथम् ॥४॥
प्रत्यक्षं भूपतिस्तस्याः सुरुच्या नाभ्यनन्दत । प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम् ॥५॥
सपत्नीतनयं दृष्ट्वा तमङ्कारोहणोत्सुकम् । स्वपुत्रं च तथारूढं सुरुचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
क्रियते किं वृथा वत्स महानेष मनोरथः । अन्यस्त्रीगर्भजातेन ह्यसम्भूय ममोदरे ॥७॥
उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेको हि वाञ्छसि । सत्यं सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न स्वं मया धृतः ॥८॥
एतद्राजासनं सर्वभूभृत्संश्रयकेतनम् । योग्यं ममैव पुत्रस्य किमात्मा क्लिश्यते त्वया ॥९॥
उच्चैर्मनोरथस्तेऽयं मत्पुत्रस्येव किं वृथा । सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥१०॥

श्रीपराशर उवाच

उत्सृज्य पितरं बालस्तच्छ्रुत्वा मातृभाषितम् । जगाम कुपितो मातुर्निजाया द्विज मन्दिरम् ॥११॥
तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरम् । सुनीतिरङ्कमारोप्य मैत्रेयेदमभाषत ॥१२॥
वत्स कः कोपहेतुस्ते कश्च त्वां नाभिनन्दति । कोऽवजानाति पितरं वत्स यस्तेऽपराध्यति ॥१३॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास तद्यथा । सुरुचिः प्राह भूपालप्रत्यक्षमतिगर्विता ॥१४॥
विनिःश्वस्येति कथिते तस्मिन्पुत्रेण दुर्मनाः । श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनीतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

रानी का नाम सुनीति था । किन्तु राजा उससे बहुत अधिक प्रेम नहीं करते थे । सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव था ॥३॥ एक दिन राजसिंहासन पर बैठे हुए पिता की गोद में विद्यमान उत्तम को देखकर ध्रुव की भी इच्छा हुयी कि वह भी अपने पिता की गोद में बैठे ॥४॥ किन्तु अपनी प्रिया पत्नी सुरुचि के समक्ष अपनी पिता की गोद में बैठने के लिए उत्सुक तथा प्रेम पूर्वक आये हुए ध्रुव का राजा ने समादर नहीं किया ॥५॥ गोद में बैठने के लिए उत्सुक सौत के पुत्र को तथा गोद में बैठे हुए अपने पुत्र को देखकर सुरुचि ने गर्व पूर्वक कहना प्रारम्भ किया ॥६॥ वत्स ! तुम इतना बड़ा मनोरथ व्यर्थ में क्यों करते हो ? तुम मेरे गर्भ से उत्पन्न न होकर दूसरी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुए हो॥७॥ तुम विवेकहीन हो इसीलिए उत्तमोत्तम तथा अलभ्य वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो । यह सत्य है कि तुम भी राजा के पुत्र हो किन्तु मैंने तुम्हें अपने गर्भ में नहीं धारण किया ॥८॥ समस्त राजाओं के आश्रयभूत यह चक्रवर्ती राजा का आसन तो मेरे ही पुत्र के योग्य है, तुम व्यर्थ ही क्यों अपने मन में सन्तप्त होते हो ?॥९॥ मेरे पुत्र के ही समान तुम्हारा यह ऊँचा मनोरथ करना व्यर्थ है, क्या तुमको इस बात का पता नहीं है कि तुम सुनीति के पुत्र हो, मेरे नहीं ?॥१०॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे द्विज ! सौतेली माता का वचन सुनकर वह बालक ध्रुव अपने पिता को छोड़कर अपनी माता के भवन में चला गया ॥११॥ हे मैत्रेये ! क्रोध से जिसके ओष्ठ कुछ काँप रहे थे, ऐसे अपने क्रुद्ध पुत्र को सुनीति ने अपनी गोद में बैठा लिया और पूछा ॥१२॥ वत्स ! तुम्हारे क्रोध का कारण क्या है ? कौन तुम्हारा आदर नहीं कर रहा है ? कौन है जो तुम्हारा अपमान करके तुम्हारे पिता का अपराध कर रहा?॥१३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** माता के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर ध्रुव ने उन सारी बातों को अपनी माँ से कहा जिन बातों को अभिमानिनी सुरुचि ने उसके पिता के सामने ही कहा था ॥१४॥ अपने पुत्र के सिसक-सिसक कर इस प्रकार से कहने पर दुःखी सुनीति ने दीन होकर तथा श्वास के कारण मलिन नेत्रों वाली होकर कहा ॥१५॥ **सुनीति ने कहा—** वत्स ! सुरुचि ने सत्य ही कहा है ? तुम मन्दभाग्य हो; पुण्यवानों से उनके

सुनीतिरुवाच

सुरुचिः सत्यमाहेदं मन्दभाग्योऽसि पुत्रक। न हि पुण्यवतां वत्स सपत्नैरेवमुच्यते॥१६॥
नोद्वेगस्तात कर्त्तव्यः कृतं यद्भवता पुरा। तत्कोऽपहर्त्तुं शक्नोति दातुं कश्चाकृतं त्वया॥१७॥
तत्त्वया नात्र कर्त्तव्यं दुःखं तद्वाक्यसम्भवम् ॥१८॥
राजासनं राजच्छत्रं वराश्ववरवारणाः। यस्य पुण्यानि तस्यैते मत्वैतच्छाम्य पुत्रक॥१९॥
अन्यजन्मकृतैः पुण्यैः सुरुच्यां सूरुचिर्नृपः। भार्येति प्रोच्यते चान्या मद्विधा पुण्यवर्जिता॥२०॥
पुण्योपचयसम्पन्नस्तस्याः पुत्रस्तथोत्तमः। मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान्॥२१॥
तथापि दुःखं न भवान् कर्त्तुमर्हति पुत्रक। यस्य यावत्स तेनैव स्वेन तुष्यति मानवः॥२२॥
यदि ते दुःखमत्यर्थं सुरुच्या वचसाभवत्। तत्पुण्योपचये यत्नं कुरु सर्वफलप्रदे॥२३॥
सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः। निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः॥२४॥

ध्रुव उवाच

अम्ब यत्त्वमिदं प्रात्थ प्रशमाय वचो मम। नैतद्दुर्वचसा भिन्ने हृदये मम तिष्ठति॥२५॥
सोऽहं तथा यतिष्यामि यथा सर्वोत्तमोत्तमम्। स्थानं प्राप्स्याम्यशेषाणां जगतामभिपूजितम्॥२६॥
सुरुचिर्दयिता राज्ञस्तस्या जातोऽस्मि नोदरात्। प्रभावं पश्य मेऽम्ब त्वं वृद्धस्यपि तवोदरे॥२७॥
उत्तमः स मम भ्राता यो गर्भेण धृतस्तया। स राजासनमाप्नोतु पित्रा दत्तं तथास्तु तत्॥२८॥
नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब स्वकर्मणा। इच्छामि तदहं स्थानं यन्न प्राप पिता मम॥२९॥

विरोधी इस प्रकार से नहीं कह पाते हैं ॥१६॥ तात ! इससे तुम उद्विग्न मत होओ। तुमने पूर्व जन्म में जो कुछ भी किया है; उसे कौन दूर कर सकता है ? तुमने जो नहीं किया है, उसे कौन दे सकता है ?॥१७॥ अतएव तुम्हें उसकी बातों से दुःखी नहीं होना चाहिए ॥१८॥ वत्स ! जो पुण्यवान् होता है, उसी को राजसिंहासन, राजछत्र तथा उत्तम कोटि के हाथी-घोड़े प्राप्त होते हैं, इस बात को जानकर तुम शान्त हो जाओ ॥१९॥ दूसरे जन्म के पुण्यों के ही कारण राजा का सुरुचि के प्रति प्रेम है और मेरी जैसी पुण्यहीन पत्नियाँ तो केवल भार्या (भरण करने योग्य) कहलाती हैं ॥२०॥ और उसी (सुरुचि) के ही समान उसका पुत्र उत्तम अत्यधिक पुण्य सम्पन्न है और तुम मेरे ही समान अत्यल्प पुण्य वाले हो ॥२१॥ हे पुत्र ! फिर भी तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। जिसके पास जितनी सम्पत्ति होती है, वह मनुष्य उतने ही मात्र से सन्तुष्ट रहता है ॥२२॥ यदि तुम्हें सुरुचि की बातों से अत्यधिक कष्ट हुआ है तो तुम सभी प्रकार के फलों को प्रदान करने वाले पुण्य पुञ्ज को प्राप्त करने का प्रयास करो ॥२३॥ तुम सुशील, धर्मात्मा, सबों के हितैषी तथा प्राणियों का कल्याण करने वाला बनो; क्योंकि जिस तरह ढलकता हुआ पानी नीचे स्थान में चला जाता है, उसी तरह सारी सम्पत्तियाँ सत्पात्र को प्राप्त हो जाती हैं ॥२४॥ **ध्रुव ने कहा**— माँ ! तुमने मेरे चित्त की शान्ति के लिए जो इन बातों को कहा है, वे दुर्वाक्य से विद्ध मेरे हृदय में नहीं टिक पा रही हैं ॥२५॥ माँ ! अब मैं ऐसा प्रयास करूँगा कि मुझे सबों से उत्तमोत्तम तथा सभी लोकों से समादृत स्थान प्राप्त हो सके ॥२६॥ सुरुचि महाराज की प्रियतम पत्नी हैं, मैं उनके पेट से नहीं उत्पन्न हुआ हूँ। अतएव हे माँ ! अपने गर्भ से उत्पन्न मेरा भी प्रभाव तुम देखना ॥२७॥ मेरा भाई उत्तम जिसे सुरुचि ने अपने गर्भ में धारण किया वह पिता के द्वारा प्रदत्त राजसिंहासन को प्राप्त कर ले, और भगवान् करें ऐसा ही हो ॥२८॥ माँ मैं किसी दूसरे के द्वारा प्रदत्त स्थान को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ, बल्कि मैं अपने पुरुषार्थ से ऐसे स्थान को प्राप्त करना चाहता हूँ जिसे मेरे पिता भी नहीं प्राप्त

श्रीपराशर उवाच

निर्जगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रुवः । पुराच्च निर्गम्य ततस्तद्बाह्योपवनं ययौ॥३०॥
स ददर्श मुनींस्तत्र सप्त पूर्वागतान्ध्रुवः । कृष्णाजिनोत्तरीयेषु विष्टरेषु समास्थितान्॥३१॥
स राजपुत्रस्तान्सर्वान्प्रणिपत्याभ्यभाषत । प्रश्रयावनतः सम्यगभिवादनपूर्वकम् ॥३२॥

ध्रुव उवाच

उत्तानपादतनयं मां निबोधत सत्तमाः । जातं सुनीत्यां निर्वेदाद्युष्माकं प्राप्तमन्तिकम् ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

चतुःपञ्चाब्दसम्भूतो बालस्त्वं नृपनन्दन । निर्वेदकारणं किञ्चित्तव नाद्यापि वर्तते ॥३४॥
न चिन्त्यं भवतः किञ्चिद्ध्रियते भूपतिः पिता। न चैवेष्टवियोगादि तव पश्याम बालक ॥३५॥
शरीरे न च ते व्याधिरस्माभिरुपलक्ष्यते । निर्वेदः किन्निमित्तस्ते कथ्यतां यदि विद्यते ॥३६॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स कथयामास सुरुच्या यदुदाहृतम्। तन्निशम्य ततः प्रोचुर्मुनयस्ते परस्परम् ॥३७॥
अहो क्षात्रं परं तेजो बालस्यापि यदक्षमा। सपत्न्या मातुरुक्तं यद्धृदयान्नापसर्पति॥३८॥
भो भो क्षत्रियदायाद निर्वेदाद्यत्त्वयाधुना । कर्तुं व्यवसितं तन्नः कथ्यतां यदि रोचते ॥३९।
यच्च कार्यं तवास्माभिः साहाय्यममितद्युते । तदुच्यतां विवक्षुस्त्वमस्माभिरुपलक्ष्यसे ॥४०॥

ध्रुव उवाच

नाहमर्थमभीप्सामि न राज्यं द्विजसत्तमाः । तत्स्थानमेकमिच्छामि भुक्तं नान्येन यत्पुरा॥४१॥

कर सके ॥२९॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** अपनी माता से इस प्रकार कह कर ध्रुव अपनी माँ के भवन से निकल गया, और नगर से निकलकर वह नगर के बाहर उपवन में चला गया ॥३०॥ ध्रुव ने वहाँ पहले से ही आये हुए सात मुनियों को देखा । वे उत्तरीय के रूप में कृष्ण मृग्चर्म को लिए हुए थे और आसनों पर बैठे हुए थे ॥३१॥ उस राजकुमार ने उन मुनीश्वरों को प्रणाम करके अत्यन्त विनम्रता पूर्वक अभिवादन पूर्वक कहा ॥३२॥ **ध्रुव ने कहा—** मुनीश्वरों ! मैं उत्तानपाद का पुत्र हूँ । मैं सुनीति के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ, और निर्वेद के कारण आपलोगों के पास आया हूँ ॥३३॥ **ऋषियों ने कहा—** राजकुमार ! तुम चार-पाँच वर्षों की अवस्था वाले बालक हो अतएव तुम्हें निर्वेद (आत्मग्लानि) होने का कोई कारण नहीं है ॥३४॥ अभी तो तुम्हारे पिता जीवित हैं, वे राजा हैं; तुम्हारे किसी इष्ट (अभिप्रेत) व्यक्ति का वियोग भी नहीं हुआ है, अतएव तुम्हें चिन्ता करने का कोई कारण नहीं दिखता है॥३५॥ हमलोग देखते हैं कि तुम्हारे शरीर में कोई व्याधि भी नहीं है; बतलाओं तुम्हें आत्मग्लानि क्यों हुयी, यदि कोई कारण हो तो बतलाओ ॥३६॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् ध्रुव ने वह सब सुनाया जो उसे सुरुचि ने कहा था । उसे सुनकर वे मुनिगण परस्पर में कहने लगे ॥३७॥ अरे ! इस बालक का भी क्षात्र तेज कितना प्रबल है ? जिसके कारण इसमें इतनी अक्षमा है । उसी के कारण इसकी सौतेली माँ ने जो कहा है, वह इसके हृदय से नहीं निकल पा रहा है ॥३८॥ ऐ क्षत्रिय बालक ! इस निर्वेद के कारण तुमने जो करने को सोचा है, तुम्हे अच्छा लगे तो हमलोगों को बतलाओ ॥३९॥ हे निस्सीम तेजस्वी ! यह भी बतलाओ कि हमलोग तुम्हारी कौन सी सहायता करें ? क्योंकि लगता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो ॥४०॥ **ध्रुव ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं धन नहीं चाहता हूँ और न तो मैं राज्य प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं तो केवल उस स्थान को प्राप्त करना चाहता हूँ जिसे पहले किसी

एतन्मे क्रियतां सम्यक्कथ्यतां प्राप्यते यथा। स्थानमग्र्यं समस्तेभ्यः स्नथानेभ्यो मुनिसत्तमाः॥४२॥

मरीचिरुवाच

अनाराधितगोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज। न हि सम्प्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम्॥४३॥

अत्रिरुवाच

परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः। स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम्॥४४॥

अङ्गिरा उवाच

यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः। तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि॥४५॥

पुलस्त्य उवाच

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम्। तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्॥४६॥

पुलह उवाच

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम्। प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत॥४७॥

क्रतुरुवाच

यो यज्ञपुरुषो यज्ञो योगेशः परमः पुमान्। तस्मिंस्तुष्टे यदप्राप्यं किं तदस्ति जनार्दने॥४८॥

वसिष्ठ उवाच

प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि। त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम्॥४९॥

ध्रुव उवाच

आराध्यः कथितो देवो भवद्भिः प्रणतस्य मे। मया तत्परितोषाय यज्जप्तव्यं तदुच्यताम्॥५०॥
यथा चाराधनं तस्य मया कार्यं महात्मनः। प्रसादसुमुखास्तन्मे कथयन्तु महर्षयः॥५१॥

दूसरे व्यक्ति ने नहीं भोगा हो॥४१॥ आपलोग हमारी यही सहायता करें कि मुझे यह बतला दें कि क्या करने से वह उत्तमोत्तम स्थान मुझे प्राप्त होगा॥४२॥ **प्रजापति ने कहा—** राजकुमार! भगवान् गोविन्द की आराधना किए बिना उस स्थान को कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता है; अतएव तुम भगवान् अच्युत की आराधना करो॥४३॥ **अत्रि महर्षि ने कहा—** सभी श्रेष्ठ पुरुषों से भी श्रेष्ठ पुरुष भगवान् जनार्दन जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं वह व्यक्ति अक्षय स्थान को प्राप्त कर लेता है, यह मैं सत्य कहता हूँ॥४४॥ **अङ्गिरा महर्षि ने कहा—** यह सम्पूर्ण जगत् प्रलयकाल में जिन अव्ययात्मा भगवान् अच्युत की कुक्षि में निवास करता है; उन भगवान् श्रीहरि की आराधना करके मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति को भी प्राप्त कर लेता है॥४६॥ **पुलह महर्षि ने कहा—** हे सुव्रत! जिन जगत् पति भगवान् विष्णु की आराधना करके इन्द्र ने श्रेष्ठ स्थान ऐन्द्र पद को प्राप्त किया तुम उन्ही जगत्पति भगवान् विष्णु की आराधना करो॥४७॥ **क्रतु महर्षि ने कहा—** जो यज्ञ पुरुष, यज्ञस्वरूप, योगियों के स्वामी तथा परम पुरुष हैं, उन भगवान् जनार्दन के सन्तुष्ट हो जाने पर संसार की कौन सी ऐसी वस्तु है; जो दुर्लभ रह जाय?॥४८॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** हे वत्स! भगवान् विष्णु की आराधना करने पर तुम अपने मन से जिस वस्तु को चाहोगे वह प्राप्त कर लोगे, तो फिर त्रैलोक्य में विद्यमान् उत्तमोत्तम स्थान की कौन सी बात है?॥४९॥ **ध्रुव ने कहा—** हे महर्षिगण! आपलोगों ने आराध्य देव को तो बतला दिया, किन्तु उन श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए जिस मन्त्र का हमें जप करना चाहिए, उसे आपलोग बतलायें। उन श्रीभगवान् की जैसे आराधना करनी चाहिए, उसे आपलोग प्रसन्न होकर हमें बतलाएँ॥५०-५१॥ **ऋषियों ने कहा—** राजकुमार! भगवान् विष्णु की आराधना में तत्पर पुरुषों

ऋषय ऊचुः

राजपुत्र यथा विष्णोराराधनपरैर्नरैः। कार्यमाराधनं तन्नो यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥५२॥
बाह्यार्थादखिलाच्चित्तं त्याजयेत्प्रथमं नरः। तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि ततः कुर्वीत निश्चलम्॥५३॥
एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना। जप्तव्यं यन्निबोधैतत्तन्नः पार्थिवनन्दनः ॥५४॥
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे। ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥५५॥
एतज्जजाप भगवान् जप्यं स्वायम्भुवो मनुः। पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ॥५६॥
ददौ यथाभिलषितां सिद्धिं त्रैलोक्यदुर्लभाम्। तथा त्वमपि गोविन्दं तोषयैतत्सदा जपन् ॥५७॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

निशम्यैतदशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः। निर्जगाम वनात्तस्मात्प्रणिपत्य स तानृषीन्॥१॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज। मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम्॥२॥
पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः। ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले॥३॥
हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्। शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै॥४॥

को उनकी आराधना जैसे करनी चाहिए उसे तुम हमलोगों से अच्छी तरह से सुनो ॥५२॥ मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम समस्त बाहरी पदार्थों से मन को हटा दे और अपने निश्चल मन को उन जगत् के आश्रय स्वरूप परमात्मा में लगा दे ॥५३॥ राजकुमार ! इस तरह एकाग्र मन से तन्मय होकर जिस मन्त्र का जप करना चाहिए उसे तुम सुनो॥५४॥ हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान तथा अव्यक्त स्वरूप, शुद्ध ज्ञान स्वरूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है॥५५॥ 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र को तुम्हारे पितामह ऐश्वर्य सम्पन्न मनु ने प्राचीन काल में जपा था, उससे भगवान् जनार्दन प्रसन्न हुए थे और प्रसन्न होकर उन्होंने मनु को अभिलषित सिद्धि भी प्रदान की थी । उसी तरह तुम भी इस मन्त्र का निरन्तर जप करते हुए भगवान् गोविन्द को प्रसन्न करो ॥५६-५७॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् का प्राकट्य और ध्रुव को वरदान प्रदान

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे मैत्रेय ! इन सारी बातों को पूर्णरूप से सुनकर राजकुमार ध्रुव उन ऋषियों को प्रणाम करके उस उपवन से निकल पड़े ॥१॥ हे द्विज ! अपने को कृत-कृत्य के समान मानकर ध्रुव यमुना के तटपर मधु नामक अत्यन्त पवित्र वन में गया ॥२॥ सर्वप्रथम मधु नामक दैत्य उसी वन में रहने लगा था अतएव उस का पृथिवी पर मधुवन नाम विख्यात हुआ ॥३॥ मधु के पुत्र लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नाम की नगरी को बसाया ॥४॥ उस मधुवन में देवाराध्य श्रीहरि का सानिध्य निरन्तर बना रहता है उसी सर्वपापप्रणाशक